International Journal of Research in Hindi
www.hindijournal.in
ISSN: 2582-3493
Received: 02-02-2024, Accepted: 26-02-2024, Published: 19-03-2024
Volume 6, Issue 1, 2024, Page No. 10-11

कबीर की लोकमंगल भावना

शिव कुमार व्यास
सह प्राध्यापक, हिन्दी विभाग, जी.एस. अर्थ–वाणिज्य, स्वशासी, महाविद्यालय, जबलपुर, मध्य प्रदेश, भारत

सारांश
जीवन की सार्थकता वास्तव में अथकता के साथ सतत् रूप से कर्म में संलग्न रहने में है, कर्मवत काया के ऐसे ज्ञानी महापुरूष के रूप में कबीर इसके जीवंत प्रमाण है, जिन्होंने जीवन की गति में ही प्रगति का बिंब संजोया। कबीर की आध्यात्मिक अनुभूत के उद्‌गार तीव्रतर हैं किंतु वे समाजगत् हैं, समाज कल्याण, लोकमंगल की भावना के परिप्रेक्ष्य में वे कुशल व्यावहारिक सिद्ध होते हैं। वे बुरी परिस्थितियों में पाप और निंदय कर्मों में प्रवत्त और अंधे समाज के लिए लाठी बन जाने में अपना अहोभाग्य मानते हैं। उन्होंने जाति, वर्णभेद की खाई को पाटकर संपूर्ण समाज में बंधुत्व तथा एक्य स्थापित करने का कार्य किया। वे संत स्वभाव होकर भी समाज और परिवार को छोड़कर नहीं भागे वरन् समाज की कढ़ियों, अंधविश्वासों धार्मिक आडंबरों, खोखले कर्मकांडो, पतनकारी विचारधाराओं पर आघात करते हुए समाज को जगाते रहे। जाति, वर्ण रंग, धर्मनिरपेक्ष राज्य की स्थापना कबीर की इसी लोकमंगलकारी साधना का परिचायक है।

मूल शब्दः दुष्प्राय, भावातिरेक, बिंब, मकरंद, लोकमंगल, उन्नायक, सुधर्म, विश्व बंधुत्व, अंतर्मुखी, सान्निध्य, तजकर, चितेरा, बहुजन हिताय बहुजन सुखाय, कर्मशील

मनुष्य के ह्रदय की भावना समग्र रूप से समक्ष प्रस्तुत के प्रति अवश्य संवेदनशील हुआ करती है, लेकिन उसे अभिव्यक्ति की दुष्प्राय डोर का सहारा मिल ही जाये यह कदापि आवश्यक नहीं है। यह भी आवश्यक नहीं बन पड़ता कि अभिव्यक्ति का स्वरूप पूर्णतः उचित हो, उसका अस्पष्ट और त्रुटिपूर्ण हो जाना संभव है, क्योंकि ह्रदयगत भावों का यथा समय, यथा परिमाण में आहरण और वितरण न होने के कारण भावातिरेक की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। शुल्क ह्रदय, भाव शून्य और कर्मच्युत व्यक्ति के लिए यह संसार बेस्वाद और सर्वथा नीरस है, ऐसे ही उस प्रकृति और जनमानस से दूर किसी हरे प्रदेश में सूखी ठूँठ की भांति शोभा पाता है।

कहते हैं कि जीवन की सार्थकता अथकता से विभूषित कर्म में संलग्न रहने में ही है। यह तथ्य अकाट्य और प्रमाणित है। वे कर्मरत काया के धनी महात्मा पुरूष धन्य है, जिन्होंने जीवन की गति में ही उसकी प्रगति का बिंब संजोया। महात्मा कबीर ऐसे ही महापरू में अपना अग्रणी स्थान रखते हैं। कबीर का आदर्श कहीं से परंपरागत तौर पर नहीं किया गया, अपितु वे तो अमर की भांति अनेकानेक पुष्पों के मकरंद को एकत्रित कर अपने अंतस के रस में मिलाकर संसार को देने वाले कुछ विरलों में से एक है। कबीर की आध्यात्मिक अनुभूति के उद्‌गार तीव्रतर हैं लेकिन वे समाजगत हैं। वे व्यक्तिगत और आत्मकल्याण की साधना के साथ ही सकल समाज में उसके विस्तार के पक्षधर हैं। कबीर ऐसे निडर व्यक्ति थे कि उनके धर्म–कर्म में आड़े आने वाले अनाचारों और कदाचारों ने उन्हें रोकने का भी प्रयास किया किंतु वे अनवरत् अबाध प्रवाह की भांति सत्य और अहिंसा का पालन करते हुए अपने लक्ष्य की और अग्रगामी बने रहे।

कबीर परमात्मा से साक्षात्कार में जो विशेष पाते हैं वह उनके व्यक्तिगत कल्याण की चीज नहीं वरन् सकल समाज के उपयोग के लिए आदेश, निर्देश और आदर्श के रूप में सामने आती है। कबीरदास जी ने अहंकार को अत्यंत व्याज्य और निंदित बताते हुए कहा भी है –

'दुर्बल को न सताइये
जाकी मोटी हाय।
मुंई खाल की सांस सों,
सार मसम है जाय।।''

समाज कल्याण, लोकमंगल की भावना के परिप्रेक्ष्य में कबीर ने अपनी आध्यात्म भावना को ही प्रदर्शित करके विश्राम नहीं पा लिया वरन् वे इस क्षेत्र में कुशल व्यवहारिक भी सिद्ध हुए, वे समाज की उन्नति के लिए नैतिक बल की रक्षा और उसके उत्थान के उन्नायक थे। नैतिकता और चरित्र के अभाव में व्यक्ति का व्यक्तित्व एक ऐसे खण्डहर की भांति शोभा खो बैठता है, जिसमें अनाचार का मकड़जाल और सर्वनाश को आमंत्रित करते चमगादड़ों के स्वर गूंजते रहते हैं। वे कहते हैं –

''सीलवंत सबसे बूड़ा
सर्वरतन की खानि।
तीन लोक की संपदा
रही सील में आनि।।''

कबीर बुरी परिस्थितियों में भी पाप से और नीच कर्मों से स्वयं को बचाकर सुकर्मों में प्रवृत्त होने की बात कहकर भटकते और दिशाहीन मनुष्य और उसकी अंधी समाज के लिए एक लाठी बन जाने में अपना अहोभाग्य समझते हैं। कबीरदास जी ने सदैव जाति भेद की खाई को पाटने का प्रयास किया क्योंकि वे सम्पूर्ण समाज को एक परिवार एवं उसमें निवास करने वालों में बंधुत्व तथा एंक्य के दर्शन करते हैं, तभी तो वे कह उठते हैं –

'जो तू वांभन वांभनी लाया,
आन बाट है क्यों नहीं आया।
जो तृ तुरक तुरकनी जाया, है
भीतर खतना क्यों नहीं कराया।''

वर्णभेद और जातिभेद रूपी घूस जो बड़े–बड़े ऊंचे महलों को भी ढहा देती हैं उसे हटाने के लिए कबीर ने लोक हिकारी भाव, मानव प्रेम एवं विश्व बंधुत्व का एक अजस्त्र श्रोत प्रवाहित किया। महात्मा कबीर ढोंग और आडंबर के सर्वथा विरूद्ध ही रहे, वे बहुदेवोपासना के संबंध में सामाजिक एकता को आघात पहुंचाना कतई पसंद नहीं करते, वे प्रत्येक मीठे बोलने और शुभवस्त्र धारण करने वाले को साधु की श्रेणी में नहीं रखते

उज्जवल देख न दीजिए
बंग ज्यूं भांडे ध्यान।
धोरे बैठि चपेटि सी,
यूं लै बूड़े ग्यान।।''

वास्तविक तौर पर कबीर की समस्त भावनाएँ एक अनुभवी और भुक्तभेगी व्यक्ति की ह्रदयगत भावनाएँ हैं ये वही संवेदनाएँ हैं जो उसने समय–समय पर समाज के अथाह सागर लहरियों में डूबते उतराते महसूस की पत्थर पूजा और तीर्थाटन के संबंधन में उनके तर्क उकाट्य हैं –

पाथर पूजे हरि मिलें,
तो मैं पूजूँ पहार
यातें तो चाकी भली
पीस खाय संसार।।''

कबीरदास जी सामाजिक एकता का विखराव और परस्पर सद्भावनाओं की कमी का एकमात्र कारण व्यक्ति का स्वार्थी और सर्वथा अंतर्मुखी हो जाना मानते हैं। भारी भरकम ग्रंथों और वेदों का भार ढोने वाले प्रेम का अर्थ न समझने वाले पंडितों को संबोधित करते हुए कहते हैं कि –

''पोथी पढ़–पढत्र जग मुआ,
पंडित भया न कोय।
ढाई आखर प्रेम का
पढ़ै सो पंडित होय।।''

महात्मा कबीर साधारण तौर पर किसी व्यक्ति द्वारा लोक साधनों को साध्य नहीं मानते थे, वे एक ऐसा व्यापक वातावरण निर्मित करने के पक्षधर थे जिसमें रहने वाला जनमन कुंठाओं, परंपराओं, पीड़दायक रूढ़ियों और पतनकारी विचारधाराओं से मुक्ति पा सके। धर्म निरपेक्ष राज्य कबीर की इसी लोकमंगलकारी साधना की एक कड़ी कहा जा सकता है।

वास्तव में कबीर का चिंतन समाज के खोखलेपन को हटाकर ठोस धरातल के निर्माण का कार्य था। उनके भक्त स्वभाव में बहुजन हिताय और बहुजन सुखाय का आह्वान था। वे प्रेम और ज्ञान के पुजारी थे तथा उन्होंने समाज को भी इसी पूजा का संदेश दिया है। वे संत स्वभाव होकर भी समाज और परिवार को छोड़कर नहीं जा सके। वास्तव में वे जानते थे कि आत्मोन्नति प्राप्ति, भगवान का सन्निध्य एकांत में सब कुछ तजकर बैठने में नहीं है वरन् कर्मशील बने रहने में हैं तालाब की गइराई का अंदाजा लगाना है तो उसमें उतरना ही होगा। वे तत्कालीन समाज के ऐसे चितेरे थे जिसने संपूर्ण जनमानस को विकृति से बचाने का वंदनीय कार्य है।

संदर्भ ग्रंथ

1. कबीर ग्रंथावली– सं. डॉ. श्याम सुंदर दास, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी।
2. कबीर हजारी प्रसाद द्विवेदी– राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
3. हिन्दी साहित्य का इतिहास – आचार्य रामचंद्र शुक्ल नमन प्रकाशन, नई दिल्ली
4. हिन्दी साहित्य का इतिहास– सम्पादक– डॉ. नागेन्द्र नेशनल पब्लिसिंग हाऊस, नई दिल्ली
5. कबीर समीक्षा– डॉ. कृष्ण देव शर्मा – अशोक प्रकाशन, नई सड़क, दिल्ली
6. कबीर ग्रंथावली– राम किशोर शर्मा, लोकभारती प्रकाशन, 15 ए महात्मा गॉधी मार्ग, इलाहाबाद।
7. संत कबीरः जीवनी व साहित्य– डायमंड बुक प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2019
8. कबीर साहित्य की परख– परशुराम चतुर्वेदी, भारती भंडार
9. कबीर की विचारधारा– गोविन्द त्रिगुणायत, साहित्य निकेतन, कानपुर
10. कबीर मीमांसा– सं. विवेकदास, कबीर वाणी प्रकाशन, वाराणसी